अथ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

पारस्करादि गृह्यसूत्रानुसार सम्यक् विचार के
साथ नागरी भाषा के विवरण सहित सब स-
नातनधर्मावलम्बी ब्राह्मणादि द्विजों के स-
पकारार्थ ब्राह्मणसर्वस्व के सम्पादक
भीमसेनशर्मा ने निर्मित करके

वेद प्रकाशयन्त्रालय इटावा में
छपाकर प्रकाशित किया
संवत् १९६१

मूल्य -)॥ } { डाकव्यय)॥

अथ पञ्चमहायज्ञप्रस्तावः ॥

श्रेयस्करतरंज्ञेयं सर्वदाकर्मवैदिकम् ॥ १ ॥
ऋषियज्ञंदेवयज्ञं भूतयज्ञंचसर्वदा ।
नृयज्ञंपितृयज्ञंच यथाशक्तिनहापयेत् ॥ २ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्चह ।
ननिर्वपतिपञ्चानामुच्छ्वसन्नसजीवति ॥३॥
ऋषयःपितरोदेवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासतेकुटुम्बिभ्यस्तेभ्यःकार्यंविजानता ४
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄञ्श्राद्धैर्नृन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—मनु जी कहते हैं कि पञ्चमहायज्ञादि वैदिक कर्म मनुष्य का सदा ही अत्यन्त कल्याण करने वालाहै । ब्राह्मणादि द्विजों को चाहिये कि ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ इनको यथाशक्ति किसी आपत्काल में भी न छोड़ें किन्तु किया ही करें। देवता,

अतिथि, भृत्य, पितर और आत्मा इन को प्रसन्न करने या रखने के लिये जो मनुष्य पञ्चयज्ञादि नहीं करता वह श्वास लेता हुआ भी धोंकनी के समान जीवित नहीं है। ऋषि, देव, भूत पितर और अतिथि लोग कुटुम्बि सद्-गृहस्थों से ऐसे ही आदर सत्कार पूजा की आशा रखते हैं कि जैसे पिता अपने पुत्रको आज्ञाकारी होना वा सद्-गुरु शिष्य से आदर की इच्छा उस २ के कल्याणार्थ रख-ता है। गुरु वा पितादि के तुल्य ऋषि देवतादि जिस पर प्रसन्न सतुष्ट हो जाते हैं उस को सब प्रकार का आनन्द मंगल लोक परलोक में प्राप्त हो जाता है। और पञ्च-महायज्ञ ही ऋषि आदि को प्रसन्न करने के लिये उपा-य हैं। उन ऋषि आदि को संतुष्ट करने के लिये समझ-दार गृहस्थ द्विज अवश्यमेव शास्त्राज्ञानुसार पञ्चयज्ञ करे। सद् गृहस्थ को चाहिये कि स्वाध्याय नाम ब्रह्मयज्ञ से ऋषियों का होम से देवतों का श्राद्ध तर्पण द्वारा पि-तरों का बलि कर्म द्वारा भूतों का तथा अन्नदान द्वारा अतिथियों का पूजन करे। धर्म के श्रद्धालु सनातनधर्मी आस्तिक ब्राह्मणादि द्विजों को यह अवश्य मानना चा-हिये कि ये पञ्चमहायज्ञ कर्म ऋषि आदि की पूजा रू-

प हैं। इन से ऋषि आदि का पूजन होना महाराज मनु बतलाते हैं। किन्तु वायु शुद्धि मात्र के लिये ये कर्म नहीं हैं॥

वेद का प्रमाण देखो—

यः समिधा य आहुती यो वेदे-
न ददाश मर्त्तोऽअग्नये यो नम-
सा स्वध्वरः ॥ ऋ० ८ । १९८ ॥

भावार्थः—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (समिधा) ढां-क आदि की समिधा मात्र चढ़ाने से (यहां अन्नादि के अभाव में खाली समिधा से होम की वा ब्रह्मचारी के समिदाधान की सूचना है) (यः) जो अन्नादि की (आहुती) आहुति से (यः) जो पुरुष (नमसा) अन्न से भूतयज्ञ अतिथि यज्ञ करने वाला तथा (योवेदेन) वेदपाठ द्वारा ब्रह्मयज्ञ का (अग्नये) अग्नि देवतादि के लिये (ददाश) समर्पण करता समिधादि देता है वह (स्वध्वरः) अग्निष्टोमादि उत्तम यज्ञ फल का भागी होता है। इस मन्त्र में संकेत पूर्वक पञ्चमहायज्ञों का उपदेश दिखाया गया है ॥

पञ्चमहायज्ञफलम् ॥

तथाचश्रुतिः-पञ्चैव महायज्ञाः । तान्येव महासत्त्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञइति ॥१॥ अहरहर्भूतेभ्यो बलिꣳहरेत्तथैतं भूतयज्ञꣳ समाप्नोति । अहरहदद्यादोदपात्रात्तथैतं मनुष्ययज्ञꣳ समाप्नोति । अहरहः स्वधा कुर्यादोदपात्रात्तथैतं पितृयज्ञꣳसमाप्नोति । अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात्तथैतं देवयज्ञꣳ समाप्नोति ॥ स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञस्तस्य वाऽएतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृच्चक्षुर्ध्रुवा मेधा सुवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनं यावन्तं ह्वाऽइमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददँल्लोकं जयति त्रिस्ता-

वन्तं जयति भूयाꣳसंचाक्षय्य यएवं विद्वा-
नहरहः स्वाध्यायमधीते तस्मात्स्वाध्यायो-
ऽध्येतव्यः ॥ शतप० ११ । ५ । ६ ॥

भावार्थः—पांच ही महायज्ञ हैं वेही महासत्र भी कहाते हैं उन के नाम-भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ ब्रह्मयज्ञ हैं। जो वस्तु अन्न फल मूलकन्द पुष्प पत्तादि प्राप्त हो उसी से प्रति दिन उन २ के नाम से बलि धरे तो इतने से भूत यज्ञ पूरा हो जाता। अन्य कुछ प्राप्त न होने पर केवल शुद्ध जल तक किसी सुपात्र ब्राह्मणादि को संकल्प पूर्वक समर्पण नित्य २ करे तो इतने से भी मनुष्ययज्ञ पूर्ण हो जाता है। अन्य के अभाव में केवल जल भी अपसव्य होके पितरों के नाम से स्वधा पूर्वक छोड़ देने पर पितृयज्ञ पूरा हो जाता। तथा होम के लिये कुछ भी अन्न घी मिष्ट वा फलादि न मिलने पर केवल समिधा का भी उन २ स्वाहान्त मन्त्रों से होम करदेने पर देवयज्ञ पूरा हो जाता है। स्वाध्याय नाम ब्रह्मयज्ञ का है उस ब्रह्मयज्ञ की वाणी ही जुहू मन उपभृत् चक्षु ध्रुवा मेधा स्रुग्घा सत्य आत्मा अवभृथस्नान है

स्वर्ग लोक की प्राप्ति ही इस यज्ञ की उदयनीया इष्टि है। धन से भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी को तीन वार दान कर देने से मनुष्य को जो फल (उत्तम लोक की प्राप्ति का आनन्द रूप) हो सकता है उतना वा उससे भी अधिक अक्षय सुख की प्राप्ति स्वाध्याय यज्ञ से उस को होती है कि जो वेदोक्त विधान को तथा वेद के मर्म को जानता हुआ ब्रह्म यज्ञ का अनुष्ठान करता है। इस लिये स्वाध्याय को नित्य करना चाहिये॥

अथातः पञ्चयज्ञाः। देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञश्चेति ॥ २ ॥ तद्यदग्नौ जुहोति स देवयज्ञो यद् बलिं करोति स भूतयज्ञो यत्पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञो यत्स्वाध्यायमधीते स ब्रह्मयज्ञो यन्मनुष्येभ्यो ददाति स मनुष्ययज्ञ इति ॥ ३ ॥ तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीत ॥ ४ ॥ आश्वलायनगृह्ये अ० ३। १।

भाषार्थः—जो भोजन के समय भोज्य वस्तु का अग्नि

म होम किया जाय वह देवयज्ञ जो उसी अन्न फलादि के ग्रास उन २ के नाम से पृथिवी में धरे वह भूतयज्ञ जो अन्न वा जल स्वधा शब्द पूर्व पितरों को समर्पण किया जाय वह पितृयज्ञ, वेदादि का जप पाठ विधि पूर्वक किया जाय वह ब्रह्मयज्ञ और अतिथि को भोजनादि देना मनुष्ययज्ञ कहाता है इन पांचों महायज्ञ को नित्य २ करना चाहिये।

अथातः पञ्चमहायज्ञाः ॥ १ ॥ वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयात्-ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतय इति ॥ २ ॥ भूतगृह्येभ्यो मणिके त्रीन् पर्जन्यायाद्भ्यः पृथिव्यै ॥ ३ ॥ धात्रे विधात्रे च द्वार्ययोः ॥ ४ ॥ प्रतिदिशं वायवे दिशां च ॥ ५ ॥ मध्ये त्रीन् ब्रह्मणेऽन्तरिक्षाय सूर्याय ॥ ६ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यश्च भूतेभ्यस्तेषामुत्तरतः ॥ ७ ॥

उषसे भूतानां च पतये परम् ॥ ८ ॥ पि-
तृभ्यः स्वधानमइति दक्षिणतः ॥ ९ ॥ पा-
त्रं निर्णिज्योत्तरापरस्यां दिशि निनयेद्य-
क्षमैतत्तइति ॥ १ ॥ उद्धृत्याग्रं ब्राह्मणाया-
वनेज्य दद्याद्गुन्ततइति ॥ ११ ॥ यथार्हं भि-
क्षुकानतिथींश्च सम्भजेरन् ॥ १२ ॥ बाल-
ज्येष्ठा गृह्या यथार्हमश्नीयुः ॥ १३ ॥ प-
श्चाद्द गृहपतिः पत्नी च ॥ १४ ॥ पूर्वो वा
गृहपतिः । तस्माद्गुस्वादिष्ठं गृहपतिः पू-
र्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः ॥ १५ ॥ अ-
हरहः स्वाहाकुर्यादन्नाभावे केनचिदाका-
ष्ठाद्द देवेभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रा-
त् ॥ १६ ॥ पारस्करगृह्ये कां० २ । कं० ९ ॥

इन सूत्रों का भाषार्थ यहां इस लिये नहीं लिखते हैं कि इन ही सूत्रों का पूरा २ अभिप्राय आगे देख-

यज्ञादि की पद्धति में लिखा जायगा वहीं देखिये। ये पञ्चमहायज्ञ विशेष कर सूत्रकार तथा स्मृतिकारों ने विधिपूर्वक स्थापित किये आवसथ्याग्नि वा गृह्याग्नि में करने कहे हैं। मनु० अ० ३ में देखो—

वैवाहिकेग्नौकुर्वीत गृह्यंकर्मयथाविधि ।
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिंचान्वाहिकींगृहो ॥

अ०—गृह्यसूत्रों में कहे अनुसार पक्षयागादि गृह्य कर्म विधिपूर्वक स्थापित किये विवाह सम्बन्धी अग्नि में करे और इसी अग्नि में नित्य २ भोजन पकाया जाय किन्तु दीक्षासलाई आदि के अग्नि से नहीं तथा उसी स्थापित अग्नि में पञ्चमहायज्ञ करने चाहिये। यही अभिप्राय पारस्कार गृह्यसूत्र का भी जानो। इस कारण मनुस्मृति में कहे मन्त्रादि से जो लोग लौकिकाग्नि में देवयज्ञ करते हैं वे भूल में अवश्यहैं उनका होम सब ग्रन्थों से विरुद्ध है। इसी लिये हम श्राकल्प संहिता में कहे अनाहिताग्नियों के लिये लौकिक अग्नि के होममन्त्र आगे लिखेंगे॥ तथा मनुस्मृति में कहे पञ्चमहायज्ञ कृष्ण यजु की मैत्रायणी आदि किसी शाखा के अनुसार हैं। और

सम्प्रति विशेष कर पश्चिमोत्तर अवध बंगाल बिहार पञ्जाब तथा राजपूतानादि भारत के अधिक प्रदेशों में शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के पारस्करगृह्य सूत्रानुसार विवाहोपनयनादि कर्म होते हैं। इसी सूत्रानुसार बनी पद्धतियों का सर्वसाधारण में प्रचार हो रहा है। इस लिये एक देवयज्ञ को छोड़ के शेष चारों महायज्ञों का विचार इसी पारस्कर सूत्रानुसार लिखेंगे। क्योंकि पारस्कर गृह्य में लिखी देवयज्ञ की आहुति आहिताग्नि पुरुष के लिये हैं। और यह नियम है कि जो कर्म अपनी वेदशाखा में न हो उस को अन्य वेद शाखा से ले लेवे।

इन पञ्चमहायज्ञों को किन्हीं वेदशाखाओं के मतानुसार सायं प्रातः दोनों बार भोजन बनने के समय किन्हीं आचार्यों ने करना कहा है परन्तु वाजसनेयी शाखा वाले ब्राह्मणादि के लिये आचार्यों का सम्मत यह है कि–

नहन्ततिंनहोमंच स्वाध्यायंपितृतर्पणम्।
नैकःश्राद्धद्वयंकुर्यात् समानेऽहनिकुत्रचित्॥१॥

अर्थ–हन्तकार से होने वाला मनुष्ययज्ञ होम नाम

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, तर्पण और श्राद्ध इन कामों को एक पुरुष एक दिन में दो बार न करे। इन में चार महा-यज्ञ तो रात्रि के भोजन समय न करे किन्तु एक भूतयज्ञ का निषेध नहीं इसी लिये मनु० अ०३।१२१में लिखाहैकि—

सायन्त्वन्नस्यसिद्धस्य पत्न्यमन्त्रंबलिंहरेत्॥

सायंकाल पकाये अन्न में से विना मन्त्र पढ़े बलि कर्म भूतयज्ञ पत्नी करे। सो यह भी अन्य शाखा का मत है। इस लिये माध्यन्दिनीय शाखा वालों के लिये कोई महायज्ञ सायंकाल में नहीं है।

इन पञ्चमहायज्ञों के करने का क्रम ऋग्वेदादि की सब शाखाओं के अनुसार यह है कि—

यश्चश्रुतिजपःप्रोक्तो ब्रह्मयज्ञस्तुससम्मतः।
सचार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वाप्रातराहुतेः॥
वैश्वदेवावसानेवा नान्यत्रहयनिमित्तकात्॥

भावार्थः—याज्ञवल्क्य जी कहतेहैं कि जो श्रुतियों नाम वेदमन्त्रादि का पाठ करना कहा है वह ब्रह्मयज्ञ कहाता है वह या तो तर्पण से पहिले कर्त्तव्य है वा प्रातः

काल अग्निहोत्र के बाद अथवा भूतयज्ञ रूप बलिकर्म के पश्चात् ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये। इन तीनों पक्षों में से वाजसनेय ब्राह्मणों के लिये तर्पण से पहिले करने की विशेष परम्परा है। तदनुसार सब से पहिले ब्रह्मयज्ञ का क्रम जानो। यहां यह भी ध्यान रहे कि नया अर्थात् कल्पित मत चलाने वाले कोई लोग सन्ध्या को ही ब्रह्मयज्ञ कहते मानते हैं सो यह मत सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है। क्योंकि सन्ध्योपासनकर्मका समय सूर्यदेव के उदय अस्त के साथ नियत है और ब्रह्मयज्ञ वैश्वदेव के अन्त में भी लिखा है वैश्वदेव भोजन बनने पश्चात् ही हो सकता है। इस के अनुसार दोपहर से पहिले ब्रह्मयज्ञ करे पश्चात् देव ऋषि पितृ तर्पण करके भोजन तयार होते ही २-देवयज्ञ, ३-भूतयज्ञ, ४-पितृयज्ञ, ५-मनुष्ययज्ञ। इसी क्रम से यहां लिखे जावेंगे॥

अथ ब्रह्मयज्ञे विशेषविचारः ॥

दर्भेषु दर्भपाणिः स्वाध्यायं च यथाशक्त्यादावारभ्य वेदम् ॥ कात्यायनपरि-

शिष्टसूत्रम् । कं० २ ॥

भा०-वरणादियज्ञिय वृक्ष से बने पट्टे पर पूर्व वा उत्तर को अग्रभाग करके तीन कुश बिछाकर उन पर पूर्व वा उत्तर को मुख करके बैठा हुआ पवित्रियों से भिन्न कुश हाथों में लिये हुए मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद का आरम्भ करके यथाशक्ति स्वाध्याय नाम ब्रह्मयज्ञ करे॥

यद्दचोऽधीते पयआहुतिभिस्तद्देवांस्तर्पयति । यद्यजूंषि घृताहुतिभिः । यत्सामानि मध्वाहुतिभिः । यदथर्वाङ्गिरसः सोमाहुतिभिः । यद्ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृताहुतिभिः ॥ २ ॥ यद्दचोऽधीते पयसः कुल्या अन्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति । यद्यजूंषि घृतस्य कुल्याः । यत्सामानि मधवः कुल्याः । यदथर्वाङ्गिरसः सोमस्य कुल्याः । यद्ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसी-

रितिहासपुराणानीत्यमृ तस्य कुल्याः ॥ आ-
श्व० गृ० ३ । ३ ॥

भाषार्थः— ऋग् यजु साम अथर्ववेदों के मन्त्र भाग ब्राह्मणभाग कल्पादि वेद के छः अङ्ग गाथा नाराशंसी और इतिहास पुराण इन पुस्तकों का स्वाध्याय यज्ञ में जप नाम पाठ करना चाहिये । ऋग्वेद पढ़ने से दूध की आहुतियों के तुल्य देवताओं को तृप्त करता 'यजुर्वेद पढ़ने से घृताहुति के तुल्य सामवेद के स्वाध्याय से मधु (शहद्) की आहुति के तुल्य अथर्ववेद के जप से सोमाहुति के तुल्य और ब्राह्मणादि ग्रन्थों के पाठ से अमृत की आहुतियों से जैसी देवताओं की तृप्ति होती है । तथा ऋग्वेदादि के स्वाध्याय से क्रमशः दूध घी मधु सोम और अमृत की धारा स्वधा रूप से स्वाध्याय करने वाले के पितरों को प्राप्त होती हैं ॥

अथ ब्रह्मयज्ञ स्वरूपम् ॥

प्राग्वोदग्वा ग्रामान्निष्क्रम्याप आप्लुत्य
शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याविलवासा

दर्भाणां महदुपस्तीर्य प्राक्कूलानां तेषु प्रा-
ङ्मुख उपविश्योपस्थं कृत्वा दक्षिणोत्तरौ
पाणी सन्धाय पवित्रवन्तौ विज्ञायते ।
द्यावापृथिव्योः सन्धिमीक्षमाणः सम्मील्य
वा यथा वा युक्तमात्मानं मन्येत तथा यु-
क्तोऽधीयीत स्वाध्यायम् ॥ २ ॥ ओं पूर्वा
व्याहृतीः ॥ ३ ॥ सावित्रीमन्वाह पच्छोर्द्ध-
र्चशः सर्वामिति तृतीयम् ॥ ४ ॥ अथ स्वा-
ध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथ-
र्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा ना-
राशंसीरितिहासपुराणानीति ॥ १ ॥ स या-
वन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिदधाति—न-
मोब्रह्मणेनमोऽस्त्वग्नये,नमःपृथिव्यैनमओ
षधीभ्यः । नमोवाचेनमोवाचस्पतये नमो

विष्णवेमहतेकरोमीति ॥ ४ ॥ आश्वला-
यनगृ० ३ । २-३ ॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिःपूतस्ततओंकारमर्हति॥१॥
अपांसमीपेनियतो नैत्यकंविधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यंसमाहितः॥२॥
एतद्विदन्तोविद्वांस-स्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ।
क्रमतःपूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते॥३॥मनु०
बद्धाञ्जलिर्दर्भपाणिः प्राङ्मुखस्तुकुशासने।
वामाङ्घ्रिमुत्तमंकृत्वा दक्षिणंतुतथाकरम्॥४
दक्षिणेजानुनिकरोत्यञ्जलिंतमृषेर्मतात् ॥
प्रणवंप्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तत्रएवतु ॥५॥
सावित्रींचानुपूर्व्येण विज्ञेयंब्रह्मणोमुखम् ।
ओंस्वस्तिब्रह्मयज्ञान्तेप्रोच्यदर्भान्क्षिपेदुदक्॥६
वेदादिकमुपक्रम्य यावद्वेदसमापनम् ।

आध्यात्मिकाऽथवाविद्याऋग्यजुःसामएवच॥७

भाषार्थः—ग्राम वा नगर से पूर्व वा उत्तर दिशा में निकल कर स्नान करके शुद्ध एकान्त स्थान में सव्य यज्ञोपवीत धारण किये आचमन करके जो किसी धान आदि में से फाड़ी नहो ऐसी चीरेदार सूखी धोती पहिने हुए पूर्व को अग्रभाग करके बहुत से कुश बिछावे उन पर पूर्वाभि मुख पद्मासन से बैठ कर कुश की पवित्री दहिने हाथ की अनामिका अंगुलि में पहिने हो दहिने घोंटू पर वाम हाथ को उत्तान रखके उस पर थोड़े कुश पूर्वाग्र धरे फिर उस पर दहिना हाथ औंधार कर ऐसी अञ्जलि बांध कर आकाश मण्डल और पृथिवी के मेल (जहां से सूर्य उदय होते) को देखता हुआ अथवा आंखें बन्द करके अथवा जिस प्रकार सुगमता और चित्तका सावधान एकाग्र रहना सम्भव दीख पड़े उस प्रकार बैठा तत्पर हुआ स्वाध्याय करे। प्रथम ओंकार पश्चात् तीनों व्याहृति तदनन्तर सविता देवता वाली गायत्री (तत्सवितु०) को ब्राह्मण (देवसवितः०) त्रिष्टुप् सावित्री को क्षत्रिय और (विश्वारूपाणि०) इस जगती सावित्री को

वैश्य प्रथमावृत्ति में एक पाद, द्वितीयावृत्ति में आधा मन्त्र और तीसरी आवृत्ति में पूरा मन्त्र पढ के शुक्ल यजुर्वेदी पुरुष प्रथम यजुर्वेद का पश्चात् क्रम से ऋक् साम अथर्व ब्राह्मण कल्प गाथा नाराशंसी और इतिहास पुराणों का तथा आध्यात्मिक विद्या उपनिषदादिका आरम्भ से यथाशक्ति थोड़ा २ पाठ सावधान जितेन्द्रिय रहता हुआ करे। जितनी देर ठीक सावधान एकाग्र चित्त रहे उतनी ही देर पाठ करे। प्रायः मनुष्यों का एकाग्रचित्त अधिक देर तक नहीं रह सकता इसी लिये संक्षेप से थोड़ा स्वाध्याय सब के लिये लिखा जायगा। जो कोई अधिक करना चाहे उसके लिये वेद संहिता और ब्राह्मणादि सभी ग्रन्थ मौजूद हैं। यदि कोई ब्राह्मणादि वेद सहितादि नहीं पढा और केवल अपना गुरु मन्त्र ही जानता है तो (सावित्रीमप्यधीयीत०) इस मनुजी के कथनानुसार वह उक्त विधि से एकान्त में प्रणव व्याहृतियों सहित अपने सावित्री मन्त्र का यथाशक्ति जप ब्रह्मयज्ञ के समय करे तो भी यह उस का स्वाध्याय ही माना जायगा। ब्रह्मा विधाता सृष्टि कर्त्ता साकार ईश्वर का यह नाम पूजन ब्रह्मयज्ञ कहाता है क्योंकि निराकार ब्रह्म के लिये वाणी से मन्त्रोच्चा-

रण हो हो नहीं सकता (न तत्र वाग्गच्छति) वाणी का वहां गम्य ही नहीं है। और इन्हीं ब्रह्मा जी के नाना-न्तर रूपान्तर कश्यपादि अनेक ऋषि हुए हैं उनका भी पूजन इसी स्वाध्याय द्वारा होता है इसी कारण इसको ऋषियज्ञ भी कहते हैं। स्वर्लोकस्थ देवताओं का यज्ञनाम पूजन देवयज्ञ तथा तिर्यग्योनि गौ आदि भूतों में जो देवांश भूतों के नाम रूपों में आया हुआ है उस देवांश का भूतो के ही नाम से यज्ञ नाम पूजन होने के कारण बलि कर्म का नाम भूतयज्ञ है। पितरों का यज्ञ नाम पूजन पितृयज्ञ कहाता तथा अतिथि वा मनुष्यों का पूजन अतिथियज्ञ वा मनुष्ययज्ञ कहाता है।

इन पञ्चमहायज्ञों में तथा विशेष कर स्वाध्याय यज्ञ में निम्न लिखित बातों का विशेष विचार कर्म धर्म के श्रद्धालुओं को रखना चाहिये—

१—इन्द्रियों का वशी भूत होना। २—चित्त की एका-ग्रता सावधानता। ३—बाह्याभ्यन्तर शरीर की शुद्धि। ४—स्थान की शुद्धि। ५—समय का नियम। ६—कुश। ७ अग्निकुण्ड तावें आदि का ८—पूर्व वा उत्तराभिमुख होना ९ आरम्भ समाप्ति का क्रम और १०-सब से अधिक पूर्ण श्रद्धा विश्वास देवभक्ति का होना कि देवतादि परोक्ष हैं उन्हीं का यह पूजन वेद शास्त्रों की आज्ञानुसार हमारे क-

त्याग्यार्थ है। जितनी इच्छा जितनी शक्ति जितना अवकाश हो अथवा जितने काल तक चित्त एकाग्र सावधान रह सके उतनी देर तक उक्त प्रकार से ब्रह्मयज्ञ में वेदादि का पाठ करके (नमो ब्रह्मणे०) इस ऋचा को पढ़ के समाप्त करे और (ओंस्वस्ति) ऐसा कहकर हाथ में लिये कुशों को उत्तर दिशा में फेंकदेवे । इति प्रस्तावः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमहायज्ञविधिः ।

तत्रादौ ब्रह्मयज्ञप्रयोगः ।

उक्तप्रकारेण ग्रामाद् बहिरसम्भवे ग्रामादावेव शुद्धविविक्तस्थले यज्ञियकाष्ठपट्टे प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य तेषूपविश्य (पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ) इति मन्त्रेण दक्षिणकरानामिकायां कुशपवित्रं धृत्वा आचम्य प्राणायामं कृत्वा संकल्पं कुर्यात् ॥ ओंतत्सत्–श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे–एकपञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदि-

वसे, अह्नो द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्त्ते, र-
थन्तरादिद्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये अष्टमे
श्रीश्वेतवाराहकल्पे स्वायम्भुवादिमन्व-
न्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे,
कृतादिचतुर्युगानां मध्ये वर्त्तमानेऽष्टाविं-
शतिमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे
भारतवर्षे आर्य्यावर्त्तान्तर्गतब्रह्मावर्त्तदाव-
मुकप्रदेशे प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणाममुक
नाम्नि संवत्सरे श्रीमन्नृपविक्रमार्कादियति
वर्षे अमुकायने अमुकमासे अमुकपक्षे अ-
मुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुक
योगे अमुकराशिस्थे चन्द्रसूर्यादिग्रहे—एवं
गुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ
ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्रा-

प्त्यर्थं ओंतत्सत्-श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं य-
थाशक्ति ब्रह्मयज्ञेनाहं यक्ष्ये ।

"अथातो ब्रह्मयज्ञं व्याख्यास्यामः" इ-
षेत्वेत्यादिकस्य खंब्रह्मान्तस्य माध्यन्दिनी-
यस्य वाजसनेयस्य यजुर्वेदाम्नायस्य वि-
वस्वानृषिः । वायुर्देवता । गायत्र्यादीनि
सर्वाणि छन्दांसि । ब्रह्मयज्ञे विनियोगः ॥

ओंभूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१॥
ओंभूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देव-
स्य धीमहि ॥२॥ ओंभूर्भुवःस्वः । तत्सवि-
तुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियोयो
नःप्रचोदयात् ॥३॥ ओं-इषेत्वोर्जेत्वा वा-
यवस्थ देवोवःसविताप्रार्पयतुश्रेष्ठतमाय
कर्मणआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्रायभागं प्रजा

र्वतीरनमीवा अयक्ष्मोमावस्ते न ईशतमा
घशंसोध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात ब्रह्मी
यंजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥ ओं वसो: प-
वित्रम्० [इति माध्यन्दिनीय शुक्लयजुः
संहितायामादिपाठः] ओंहिरण्मयेन पा
त्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावा-
दित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ ओंखंब्रह्म ॥
[इति संहितायां समाप्तिपाठः] ओं व्रत
मुपैष्यन्नन्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च
प्राङ्तिष्ठन्नपउपस्पृशति । तद्व्रदपउपस्पृ-
शत्यमेध्यो वै पुरुषो यद्वनृतं वदति तेनपू-
तिरन्तरतोमेध्यावाऽआपो मेध्यो भूत्वा
व्रतमुपायानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्र
पूतोव्रतमुपायानीति तस्माद्वाऽअपउपस्पृ-

शति ॥ १ ॥ सोऽग्निमे वाऽभीक्षमाणो व्रत
मुपैति० [इति शत०ब्राह्मणे आदिपाठः]
[ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदु-
च्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशि-
ष्यते ॥ ओं खंब्रह्म । ओं खं पुराणम् ।
ओं वायुरेव खमिति ह्यमाह कौरव्यायणी
पुत्रो वेद यं ब्राह्मणा विदुर्वेदेन न यद्वेदित-
व्यम् ॥] ओं प्राश्नीपुत्रादासुरिर्वासिनः
प्राश्नीपुत्र आसुरायणादासुरायण आसुरे-
रासुरिर्याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्य उद्दालकादु-
द्दालकोऽरुणादरुण उपवेशे रुपवेशिः कुश्रेः
कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो ब्रा
ध्योगाज्जिह्वा वान् ब्राध्योगोऽसिताद्वार्षगः
णाद्वार्षगणो हरितात्कश्यपाद्धरितः

कश्यपः शिल्पात्कश्यपाच्छिल्पः कश्यपः कश्यपान्नैध्रुवेः कश्यपो नैध्रुविर्वाच्यो वा-गम्भिण्या अम्भिण्यादित्यादादित्यानीमा-नि शुक्लानि यजूᳬंषि वाजसनेयेन या-ज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते [इतिशतपथान्त्य-पाठः] ओं-अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्न धातमम् ॥१॥ [इति ऋग्वेदोपलक्षणम्] ओम्-अग्न-आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि-होतासत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ [इति सामवे-दोपलक्षणम्] ओम्-शन्नो देवी रभिष्ट-य आपो भवन्तु पीतये। संयोरभिस्रवन्तुनः ॥१॥ [इत्यथर्ववेदोपलक्षणम्] "चतुर्वेदा-नन्तरं वेदाङ्गानि पठेत्" अथानुवाकान्व-क्ष्यामि [इत्याद्यनुवाकसूत्राणि] मण्डलं

दक्षिणमक्षि हृदयम् [इत्यादि शिक्षान्तरे]
अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि [इत्यादि पाणि-
नीयशिक्षायाम्] अथातोऽधिकारः । फल
युक्तानि कर्माणि ॥ [इत्यादिः कातीयश्रौ-
तकल्पः] अथातोगृह्यस्थालीपाकानां कर्म ॥
[इत्यादिः पारस्करगृह्यकल्पः] वृद्धिरा-
दैच् ॥ [इत्यादि व्याकरण सूत्रम्] गौः ।
ग्मा । समाम्नायः समाम्नातः ॥ [इत्यादि
निरुक्तम्] धीश्रीस्त्रीम् । वरासाय् । का-
गुहार् । वसुधास् । सातेक्वल् । कद्रासज् ।
किंवदभ् । महसन् । गृल् । गन्ते ॥ [इ-
त्यादि छन्दः सूत्रम्] पञ्चसंवत्सरमयं यु-
गाध्यक्षम् ॥ [इत्यादि ज्योतिषाङ्गम्] अ-
थातोधर्मजिज्ञासा ॥ [इत्यादि पूर्वमीमां-

सासूत्रम्] अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥] इ-
त्याद्युत्तरमीमांसा सूत्रम्] योगीश्वरं या-
ज्ञवल्क्यम् ॥ [इत्याद्यास्मृतिः] नारायणं
नमस्कृत्य [इत्यादीतिहासपुराणादि]
इति विधातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः ।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः
॥१॥ एवं ब्रह्मयज्ञं समाप्य कुशपवित्रत्या-
गमुत्तरस्यां दिशि कुर्यात् ॥ ओं यस्यस्मृ-
त्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्देतमच्यु-
तम् ॥१॥ "समर्पणम्" अनेन ब्रह्मयज्ञाख्येन
कर्मणा श्रीभगवान् परमेश्वरः प्रीयतांन-
मम । ओं तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

इति ब्रह्मयज्ञ प्रयोगः समाप्तः ॥

भाषार्थः—पूर्व लिखे अनुसार ग्राम से बाहर पूर्व वा उत्तर दिशा में शुद्धस्थान में जाके अथवा बाहर पहुंचना सम्भव न हो तो ग्राम वा नगर के शुद्ध एकान्तस्थान में यज्ञ आदि वृक्ष के पट्टा पर कुशासन वा अनका आसन बिछाके उस पर पूर्व को जिनका अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछा कर उन पर पूर्वाभिमुख सावधानी से बैठ कर (पवित्रे०) मन्त्र पढ़ के दहिने हाथ की अनामिका अंगुली में पवित्री पहिन कर तथा (सन्ध्योपासनादि में लिखे अनुसार मध्याह्न का [आपः पुनन्तु०] मन्त्र से आचमन और प्राणायाम करके संकल्प पढ़े (एवं गुणवि०) से पहिला संकल्प सर्वत्र नहीं लिखा जाता है उस को अन्य कर्मों में भी ज्यों का त्यों पढ़ना चाहिये। संकल्प में आये अमुक शब्द के स्थान में उस प्रदेशादि का नामोच्चारण करना चाहिये, [इति माध्यन्दिनीय०] इत्यादि प्रकार के कोष्ठों में आया पाठ ब्रह्मयज्ञ में बोलने के लिये नहीं है इस लिये उस को बोलना नहीं चाहिये। ब्राह्मण की सावित्री यहां लिखी है। यदि कभी कोई क्षत्रिय वा वैश्य ब्रह्मयज्ञ करे तो वह अपने २ पूर्व प्रस्ताव में लिखे मन्त्र को व्याहृतियों सहित पढ़े। जितना

पाठ वेद संहिता तथा ब्राह्मणादि ग्रन्थों का ऊपर लिखा है. कम से कम उतना तो प्रतिदिन सब को करना ही चाहिये । यदि कोई पुरुष उन २ ग्रन्थों का अधिक पाठ करना चाहे तो ऊपर लिखे से आगे जितना पहिले दिन करे उस से आगे २ अगले दिनों में करता रहे । परन्तु यह ध्यान रहे कि ब्रह्मयज्ञ में पूर्व से ही ठीक २ शुद्ध कण्ठस्थ किया हो उक्त विधान से पाठ करना बन सकता है । इस लिये नित्य नियम करने वालों को वेदादि का सस्वर शुद्ध पाठ कण्ठस्थ कर लेना चाहिये। यह भी ध्यान रहे कि शुक्ल यजु के पारस्कर गृह्य में ब्रह्मयज्ञ का विशेष विधान नहीं था इस कारण हमने जो आश्वलायन गृह्य से इस का अपने अनुकूल विशेष विधान लिया है वह शास्त्र मर्यादा के अनुकूल है । यद्यपि [पूर्ण मदः०] इत्यादि पाठ कोष्ठ में लिखा है तथापि वह छोड़ देने के लिये नहीं है किन्तु समाप्ति का पाठान्तर जान पड़ता है इस लिये उसका उच्चारण लिखे अनुसार करना ही उचित है । इस प्रकार ब्रह्मयज्ञ को समाप्त करके उत्तर दिशा में कुश पवित्रों को त्याग देवे । पश्चात् लिखे अनुसार पढ़ के समर्पण करे ॥ इति ब्रह्मयज्ञः समाप्तः ॥

अनाहिताग्नेर्वैश्वदेवयज्ञादौ विशेषः।

अथातो धर्मजिज्ञासा । केशान्तादूर्ध्व-मपत्नीकउत्सन्नाग्निरनग्निको वा प्रवासी ब्रह्मचारी चान्वग्निरिति ग्रामाग्निमाहृत्य पृष्ठोदिवीत्यधिष्ठाप्य त्रिभिश्च सावित्रैः प्रज्वाल्य ताᳬं सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानिदेव सवितरिति पूर्ववदक्षतैर्हुत्वा पाकं पचेत् । वैश्वदेवं ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृतइत्युपस्पृश्य पूर्ववद्बलिकर्मैवं कृते न वृथापाको भवति न वृथापाकं पचेन्न वृथा पाकमश्नीयात् ॥ पारस्कर गृ० २।१२॥

ओं अन्वग्निरुषसामग्रमख्य-दन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा

च॑ रश्मीननु द्यावा॑ पृथिवी आत॑तन्थ ॥१॥
शु० य० अ० ११ । १७ ॥ ओं—पृष्टोदिवि
पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टोविश्वाऽओ
षधीराविवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो-
ऽअग्निःसनोदिवा सरिषस्पातुनक्तम् ॥२॥
शु० य० अ० १८ । ७३ ॥ ओं—ताꣳ सवितु-
र्वरेण्यस्य चित्रा—माहंवृणे सुमतिं विश्व-
जन्याम् । यामस्य कण्वोऽअदुहत्प्रपीनाꣳ
सहस्रधाराꣳ पयसामहीं गाम् ॥३॥ शु० य०
अ० १७ । ७४ ॥ ओं—तत्सवितुर्वरेण्यं भ-
र्गो देवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोद-
यात् ॥४॥ शु० य० अ० ३६ । ३ ॥ ओं—वि-
श्वानि देवसवितर्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रं
तन्नआसुव ॥ ५ ॥ शु० य० । अ० ३० । ३ ॥

भाषार्थः-यह ऊपर लिखी कण्डिका पारस्कार गृह्य-सूत्र का परिशिष्ट भाग जानो। केशान्त संस्कार के पश्चात् जो पुरुष विवाह न होने आदि के कारण पत्नी रहित हो अथवा पत्नी के मरने आदि कारण से जिसका अग्नि स्थापन नष्ट हो गया हो। अथवा जिसने अज्ञान प्रमादादि से अग्नि स्थापन किया ही न हो [जैसे कि संप्रति प्रायः सभी ब्राह्मणादि निरग्नि हैं] अथवा आहिताग्नि पुरुष विदेश में गया हो वा ब्रह्मचारी हो इन सब के लिये देवयज्ञादि की उत्तम रीति यह है कि ऊपर लिखे (अन्वग्नि०) मन्त्र को पढ़ के किसी सद्गृहस्थ के घर से अग्नि लाकर (पृष्टोदिवी०) मन्त्र से सायं प्रातः स्मार्त्त अग्निहोत्र करना हो तो कुण्ड में वा भोजन ही पकाना हो तो चूल्हे में स्थापित करके और (ताधंसवितु०) इत्यादि तीन मन्त्रों से धौंकनी द्वारा प्रज्वलित करके सायं प्रातः काल अग्निहोत्र की दो २ आहुति इसी अग्नि में करके [अग्निहोत्र की पद्धति पृथक् छपी है] इसी अग्नि में भोजन पकावे। इसी अग्नि में (ब्रह्मणे स्वाहा) इत्यादि सात मन्त्रों से पकाये अन्न की सात आहुति रूप देवयज्ञ करे। पश्चात् हाथ धो

के भूत बलि करे। ऐसा करने से वृथा पाक नहीं होता किन्तु वेदोक्त विधि से होने वाला सच्चा पाक हो जाता है। वेद का सिद्धान्त है कि वृथा पाक न पकाना और न खाना चाहिये। इस लिये पहिले से अग्निस्थापन न होने पर भी नित्य २ ऐसा करने से स्थापन किये अग्नि में अग्निहोत्र और पञ्चमहायज्ञ करने वाले के तुल्य ही वह पुरुष पुण्य का भागी होता है॥

(२) अथ देवयज्ञप्रयोगः।

(वैश्वदेव विधिः)

आचम्य प्राण नायम्य "संकल्पः" अद्य पूर्वोच्चारितएवंगुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्चसूनाजनितसकलदोषपरिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पञ्चमहायज्ञैरहं यक्ष्ये। (पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ) इति मन्त्रेण कुशपवित्रधारणम्। पश्चात् कु-

पञ्चस्थमग्निं वेणुधमन्या प्रज्वाल्य ध्यायेत्।
अथाग्निध्यानम् । ओं चत्वारि शृङ्गात्रयो
ऽअस्यपादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासोऽअस्य । त्रि-
धाबद्धोवृषभोरोरवीति महोदेवो मर्त्यां ऽ-
आविवेश [॥१॥ शु० यजु० १७ ।९१॥] ओं-
एषोह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोहजातः
सउगर्भे ऽअन्तः । सएव जातः सजनिष्य-
माणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः
[॥२॥ शु० यजु० ३२ । ४] मुखंयःसर्वदेवानां
हव्यभुक्कव्यभुक्तथा । पितृणांचनमस्तस्मै
विष्णवेपावकात्मने ॥३॥ पावकनाम्ने वै-
श्वानराय नमः । अग्नये अत्रं नमः । अ-
ग्नये गन्धं नमः । अग्नये अक्षतान् पुष्पं च
नमः । [एवं चन्दनादिनाऽग्निं पूजयित्वा]

अग्नये नमोनमः। [इत्युक्त्वा प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्य—इतरथावृत्तिं कुर्यात्।] अग्ने शाण्डिल्यगोत्र मेषध्वज प्रमुख संमुखो भव। [इति संमुखीकृत्य निम्नाहुतीर्जुहुयात्। मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरामलकफल प्रमाणाघृतप्रोक्षितौदनस्य पात्रान्तरे स्थापितस्य कुण्डस्थे प्रज्वलितेऽग्नावाहुतीः क्षिपेत्। यद्याहिताग्निः पुरुषः स्यादथवोक्त प्रकारेण पृष्ठे द्वितीयग्निं स्थापयित्वदात्]—ओं ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम। ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। ओं गृह्याभ्यः स्वाहा। इदं गृह्याभ्यो न मम। ओं—कश्यपाय स्वाहा। इदं कश्यपाय न मम। ओमनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये न मम। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-

हा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम । ओम् - अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम । [इत्याहिताग्नेर्दैवयज्ञः ॥] ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम । ओं स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम । ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम । ओं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं एनसऽएनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं यच्चाहमेनोविद्वांश्चकार

यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । इदमग्नये नमम। ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम। ओम्-अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम । इत्येवं द्वादशाहुतीर्हुत्वा देवयज्ञं समापयेत् ॥ इत्यनाहिग्नेराहुतयः ॥

इति द्वितीयो देवयज्ञः समाप्तः ॥

भाषार्थः—आचमन प्राणायाम और संकल्प लिखे अनुसार करके (पवित्रेस्थो०) मन्त्र से कुश की पवित्री धारण करे। पश्चात् कुण्ड में वा स्थण्डिल रूप वेदि में स्थापित किये अग्नि पर ढांक आदि की समिधा रख के बांस की धोंकनी से प्रज्वलित करके (ओं चत्वारि०) इत्यादि दो मन्त्रों को तथा (मुखंयः०) श्लोक को पढ़ता हुआ अग्नि देवता के स्वरूप का ध्यान करे। फिर अग्नि देवता को नमस्कार करके कपूर केशर चन्दन अक्षत पुष्पादि से अग्नि देवता की पूजा करे अर्थात् कपूरादि को पूजा बुद्धि से प्रज्वलित अग्नि में छोड़े। फिर

(अग्नये नमो नमः) कह कर ईशान कोण से लेकर अग्निकुण्ड के सब ओर पर्युक्षण नाम जल धारा प्रदक्षिण क्रम से छोड़े और फिर उस दहिने हाथ को जहां से जल सेचन का आरम्भ किया था वहीं तक लौटा लावे। फिर (अग्नये शाण्डिल्य०) इत्यादि कह कर अग्नि देव को अभिमुख आवाहन करके पकाये हुए वैश्वदेव नामक अन्न से थोड़ा अनुमान साफिक भात आदि अलवण अन्न पात्र में धरके उस में घी मिला के स्थण्डिल रूप वेदि पर वा तांबे आदि के कुण्ड में सम्यक् प्रज्वलित अग्नि में आमले के फल प्रमाण आहुती निम्न लिखित मन्त्रों से छोड़े। [यदि जिस ने विधि पूर्वक आवसथ्य अग्नि स्थापित किया हो नित्य रहता हो तो वह उसी अग्नि में नित्य भोजन पकावे और उसी अग्नि कुण्ड से (ओं ब्रह्मणे०) इत्यादि मन्त्रों से पांच आहुति देवे। नमम– कहने के साथ आहुति छोड़ना चाहिये। यही सात आहुति आहिताग्नि पुरुष का देवयज्ञ है] और जिसने अग्नि स्थापन नहीं किया वह भी (पृष्टोदिवि०) मन्त्र से स्थापित करके पाक बनावे तो भी उक्त सात आहुति करे तथा जिस का अग्नि सर्वथा लौकिक हो वह (ओंभूः०) इत्यादि मन्त्रों से वारह आहुति लौकिक अग्नि में उक्त प्रकार से

करे । आहुति देते समय दक्षिना घोंटू पृथिवी में गिरा लेना चाहिये । पकाये अन्न का नाम वैश्वदेव इस लिये कहा गया है कि—देव, भूत, पितर और मनुष्य इन सब के लिये पकाया अन्न वैश्वदेव कहाता है ! (विश्वे देवाद्यो देवता अस्यं तद् वैश्वदेवमन्नम्) इस अन्न से होने वाले देव पितर भूत और मनुष्यों के चारों महायज्ञ भी वैश्वदेव कहाते हैं ॥ यह देवयज्ञ समाप्त हुआ ॥

(३) अथ भूतयज्ञः

गोमयादिनालिप्तायां भूमौ चतुरङ्गुलमात्रं वितस्तिमात्रं वा उदङ्मुख चतुष्कोणं मण्डलं लिखित्वा तत्र दिशां क्रमेण बलिहरणं कुर्यात् ॥ १ ॥ ओंधात्रे नमः । इदं धात्रे नमम ॥२॥ ओं विधात्रे नमः । इदं विधात्रे नममं । ३ । ४ । ५ । ६—ओंवायवे नमः । इदं वायवे नमम । [इत्यनेनैव चतसृषु दिक्षु प्रदक्षिणक्रमेण चतुरो बलीन्

दद्यात् । ततः-] ७-ओंप्राच्यै दिशे नमः । इदं प्राच्यैदिशे नमम । ८-ओं दक्षिणायै दिशे नमः । इदं दक्षिणायै दिशे नमम । ९-ओं पश्चिमायै दिशे नमः । इदं पश्चिमायै दिशे नमम । १०-ओं उदीच्यैदिशे नमः । इदमुदीच्यैदिशे नमम । [इति क्रमेण चतुरो बलीन् दत्वा ततोमध्ये]११-ओंब्रह्मणे नमः । इदं ब्रह्मणे नमम । १२-ओं-अन्तरिक्षाय नमः । इदमन्तरिक्षाय नमम । १३-ओं सूर्याय नमः । इदं सूर्याय नमम । [तदनन्तरं] १४ ओंविश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमम । १५-ओं-विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः । इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमम । [इति बलित्रयं मध्यादुत्तरप्रदेशे दद्यात्] । १६-ओं-उषसे नमः । इदमु-

षसे नमम। १७-ओंभूतानां पतये नमः। इदं भूतानां पतये नमम। इति पूर्वबलिद्वयादप्युत्तरे दद्यात्। इति भूतयज्ञः समाप्तः। अत्रैव गृहे स्थापितदैवतप्रतिमाग्रे नैवेद्यभोज्यादिकमर्पयेत् तच्चदेवयज्ञाङ्गम् ॥

(४) अथ पितृयज्ञः।

ततो ब्रह्मादिकोष्ठमध्यस्थबलित्रयाद् दक्षिणप्रदेशे प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पितृतीर्थेन-ओंपितृभ्यः स्वधानमः ॥ इति बलिं विसर्जयेत्। इति पितृयज्ञः ॥

पुनर्यस्मिन् पात्रे वैश्वदेवार्थमन्नमोदनादिकं रक्षितं तत्किंचिज्जलेन प्रक्षाल्य तज्जलं वायव्यां दिशि-ओंयक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः। इदं यक्ष्मणे नमम। इति क्षिपेत्।

पूर्व

२ ओं विधात्रे नमः। हृद०

७ ओं प्राच्यै दिशे नमः

१ ओं धात्रे नमः। हृद०

१० ओं उदीच्यै दिशे नमः

३ ओं वायवे नमः

६ ओं वायवे नमः

१७ ओं भूतानां पतये नमः

१६ ओं उषसे नमः।

८ ओं दक्षिणायै दिशे नमः

१८ गृहदेवाभ्यो नैवेद्यार्पणम्।

४ ओं वायवे नमः

१४ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः

१५ ओं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः

१३ ओं सर्वाय नमः

१२ ओं अन्तरिक्षाय नमः

११ ओं ब्रह्मणे नमः

(पितृयज्ञः)

१९ ओं पितृभ्यः स्वधा नमः (अपसव्येन पितृतीर्थेनोबलिमेकं दद्यात्)

२० ओं यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्

५ ओं वायवे नमः

९ ओं पश्चिमायै दिशे नमः

उत्तर

दक्षिण

पश्चिम

अथ काकादिभ्योबलिदानं

तद्यथा

सुरभिर्वैष्णवीमाता नित्यं विष्णुपदेस्थिता।
गोग्रासस्तुमयादत्तः सुरभेप्रतिगृह्यताम्॥१॥
सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तुमेग्रासंगावस्त्रैलोक्यमातरः॥२॥

इदं गोभ्यो नमम ।

ऐन्द्रवारुणवायव्याःसौम्याश्चैनैर्ऋतास्तथा ।
वायसाःप्रतिगृह्णन्तुभूमौपिण्डंमयाऽर्पितम्॥२

इदं वायसेभ्यो नमम । द्वौश्वानौश्या-
मशवलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यां-
पिण्डंप्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ॥४॥
इदं श्व-भ्यां नमम ॥ ओं-देवामनुष्याः
पशवोवयांसि सिद्धाश्चयक्षोरगदैत्यसंघाः

। प्रेताःपिशाचास्तरवःसमस्ता येचान्नमिं-
च्छन्तिमयाप्रदत्तम् ॥ ५ ॥ इदं दे-
वादिभ्यो नमम ।ओंपिपीलिकाःकीटपतङ्गः
काद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः । प्रया-
न्तुतेतृप्तिमिदंमयान्नं तेभ्योविसृष्टं सुखि-
नोभवन्तु ॥ ६॥ इदं पिपीलिकादिभ्यो न-
मम । येषांनमाता न पिता न बन्धुर्नैवा
न्नसिद्धिर्नतथाऽन्नमस्ति। तत्तृप्तयेऽन्नं भुविद-
त्तमेतत्तेयान्तुतृप्तिं मुदिताभन्तु ॥ ७ ॥ इदं
तेभ्यो नमम । चतुर्दशीभूतगणीयएष तत्र-
स्थियायेऽखिलभूतसंघाः । तृप्त्यर्थमन्नं हि-
मयाविसृष्टं तेषामिदं तेमुदिताभवन्तु ॥८॥
इदं भूतसंघेभ्यो नमम ॥

(५-अथ मनष्ययज्ञः)

पश्चाद्धस्तौ पादौचप्रक्षाल्यातिथयेब्रा-
ह्मणायसंन्यासिने ब्रह्मचारिणे वा प्राप्ताय
तद्पादप्रक्षालनपूर्वकं शुद्धस्थले शुभासन
उपवेश्य गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्य तत्तृप्तये
महार्हमुत्तमं स्वादुन्नं परिवेष्य-औंहन्ततेऽन्नं
मिदं सनकादिमनुष्याय नमः । नमम । इ-
ति पक्वमन्नं समर्पयेत् । अतिथेरप्राप्तौ
षोडशग्रासमितमन्नं संकोचे चतुर्ग्रासमितं
वाऽन्नं (औंहन्तते०) इति संकल्प्य कस्मै-
चिद् भिक्षुकाय गवादिपशवे वा दद्यात् ।
सर्वाभावे संकल्प्य रक्षयेत् पश्चात्कस्माअपि
दद्यात् ॥ इति मनुष्ययज्ञः समाप्तः ॥

ततो हस्तं प्रक्षाल्य प्रथमानुलेपितं भ-
स्मनिस्सार्य गन्धादितिलकं कुर्यात् । ओं त्र्या

युषं जमदग्नेः। इति ललाटे। ओं कश्यपस्य त्र्यायुषम्। इति ग्रीवायाम्। ओंयद्देवेषु त्र्यायुषम्। इति दक्षिणवामभुजयोः। ओं तन्नोऽअस्तुत्र्यायुषमिति हृदि। ततोऽग्नि विसर्जनम्। गच्छगच्छसुरश्रेष्ठ स्वस्थानेपरमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्रगच्छहुताशन॥ पुनः कुशपवित्रं त्यक्त्वा समर्पणं कुर्यात्। अनेन वैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञनारायणस्वरूपी परमेश्वरः प्रीयतां नमम। ओंतत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु। यस्यस्मृत्याचनामोक्त्या यज्ञदानजपादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतांयाति सद्योवन्देतमच्युतम्॥ ओं विष्णवे नमः। ३ त्रिः॥ इति वैश्वदेव प्रयोगः समाप्तः॥

भाषार्थः—गोवर आदि से लीपी हुई भूमि पर चार

अंगुल का वा १२ बारह अंगुल चौकोण मण्डल मम प्रमाण जल द्वारा खैंच कर उस मण्डल में दिशाओं के क्रम से (ओं धात्रे नमः०) इत्यादि मन्त्रों से १७ सत्रह ग्रास अगले कोष्ठ में लिखे अनुसार यहां २ धरे। इसी का नाम भूतयज्ञ वा बलिवैश्वदेव है। क्योंकि विश्वेदेवों के निमित्त पकाया अन्न वैश्वदेव कहाता उस वैश्वदेव नामक अन्न से किया बलिकर्म बलिवैश्वदेव है। यह तीसरा भूतयज्ञ पूरा हुआ ॥ इसी अवसर में सद्गृहस्थ के घरों में स्थापित की देवताओं की प्रतिमाओं के समक्ष भोजन वस्तु तथा नैवेद्यादि समर्पण करे इसी का नाम ठाकुर जी को भोग लगाना है। और यह भोग लगाना देवयज्ञ के अन्तर्गत आगो ॥

यद्यपि वेद की अन्य शाखाओं के अनुसार देव ऋषि पितरों का तर्पण भी पितृयज्ञ कहाता है इसी लिये (पितृयज्ञस्तु तर्पणम्) मनु जी ने कहा है तथापि शुक्ल यजुर्की माध्यन्दिनीय शाखा तथा पारस्कर गृह्यसूत्रानुसार भूतबलियों के पश्चात् ब्रह्मादि के नाम से रक्खी बीच की तीन बलियों से दक्षिण में अपसव्य हो दक्षिण को ख कर पितृतीर्थ से एक बलि (ओं पितृभ्यः स्वधानमः)

मन्त्र से छोड़े इसी का नाम पितृयज्ञ है । नित्य श्राद्ध इस से भिन्न है उसकी पद्धति । में पृथक् मिलेगी ॥ यह चौथा पितृयज्ञ पूरा हुआ ॥

इस के पश्चात् जिस पात्र में वैश्वदेव के लिये भात आदि अन्न रक्खा हो उस को थोड़े जल से धोकर उस जल को कोष्ठ के वायु कोण में (ओं यक्ष्मैतत्ते०) मन्त्र पढ़ के छोड़े । तत्पश्चात् स्मृतियों में कहे अनुसार काक आदि के नाम से (सुरभिर्वैष्णवी०) इत्यादि स्मार्त मन्त्रों को पढ़ २ के सात बलि कोष्ठ से बाहर उत्तर में धरे । यह कर्म भी भूतयज्ञ के अन्तर्गत जानो ॥

पश्चात् हाथ पांव धोकर कोई ब्राह्मण वा संन्यासी [जो ब्राह्मण से संन्यासी हुआ हो] वा ब्रह्मचारी मिल जावे उपस्थित हो तो उस के पग स्वयं अपने हाथों से धोकर शुद्ध स्थान में अच्छे आसन पर बैठा कर और केशर चन्दन पुष्प मालादि द्वारा उस का पूजन करके उस की तृप्ति के लिये उत्तम स्वादिष्ठ भोजन परोस कर (ओंहन्तते०) इत्यादि मन्त्र से पका भोजन उस के आगे धरे । यदि कोई अतिथि उस समय प्राप्त न हो तो सोलह ग्रास परिमित वा संकोच हो तो चार ग्रास

परिमित अन्न (ओं इन्तते०) मन्त्र से संकल्प करके किसी भिक्षुक को वा गौ आदि पशु को देदेवे अथवा कोई भी समीप न हो तो संकल्प करके रख छोड़े पीछे किसी को दे देवे। यह पांचवां मनुष्ययज्ञ पूरा हुआ॥

तदनन्तर हाथ धो कर पहिले का लगा मस्तक का भस्म पोंछ कर (त्र्यायुषं०) इत्यादि चार मन्त्रों से ललाट, ग्रीवा, भुजा और हृदय में क्रमशः चन्दनादि लगावे। फिर (गच्छगच्छ०) इस स्मार्त मन्त्र से अग्नि देवता का विसर्जन करके कुश पवित्र त्याग कर (अनेन वैश्व०) इत्यादि पढ़ कर समर्पण करे। यह अन्त्य का कृत्य देवयज्ञादि चारों का शेष है। यह वैश्वदेव प्रयोग विधान समाप्त हुआ॥ ओं तत्सत॥

पञ्चमहायज्ञ के अन्त में पारस्कर गृह्यसूत्रकार लिखते हैं कि इस उक्त प्रकार नित्य २ स्वाहा शब्दान्त मन्त्रों से देवयज्ञ करे। यदि किसी कारण अन्न प्राप्त न हो तो फल मूल कन्द शाकादि जो प्राप्त हो उसी से पञ्चमहायज्ञ करे। यदि खाने को कोई भी पदार्थ न मिले तो

अतिथिभ्योऽशितेभ्योऽनन्तरं तस्मात्स्वा-

भुक्त्वाथादिष्टं तद्गृहपतिः पत्न्याः पूर्वमश्नीयादित्यर्थः ।

केवल सूखी समिधा मात्र स्वाहान्त मन्त्रों से अग्नि में चढ़ावे । क्योंकि वह भी अग्नि देवता का भोजन है। तथा अन्न के अभाव में पितृ भूत और मनुष्य यज्ञ के लिये उन २ मन्त्रों से जल छोड़ें । इस प्रकार नित्य २ पञ्चमहायज्ञों को करके ही गृहस्थ पुरुष भोजन करे । प्रथम बालक बालिकाओं को भोजन कराया जाय तब अतिथि को उससे पीछे अन्य लोग करें। सबसे पीछे घरके मुखिया स्त्री पुरुष भोजन करें । अथवा अतिथियों को भोजन कराने पश्चात् पत्नी से पहिले गृहपति पुरुष भोजन करले तब अन्य करें । अर्थात् पहिले कथन से स्त्री पुरुष दोनों पीछे से साथ ही भोजन करें और द्वितीय पक्ष है कि पुरुष स्त्री से पहिले करले और स्त्री सब से पीछे भोजन करे । अतिथियज्ञ पर मनुस्मृति में कुछ विशेष लिखा है सो यहां दिखाते हैं—

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतंविप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयतिदुर्गाच्च महतश्चैवकिल्बिषात्॥१॥

एकरात्रन्तुनिवसन्ब्राह्मणःस्मृतः ।
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्माद्तिथिरुच्यते२
यदिह्यतिथिधर्मेण क्षत्रियोगृहमाव्रजेत् ।
भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कामंतमपिभोजयेत्॥३॥
वैश्यशूद्रावपिप्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ।
भोजयेत्सहभृत्यैस्तौ-वानृशंस्यंप्रयोजयन्॥४॥
इतरानपिसख्यादीन् संप्रीत्यागृहमागतान् ।
सत्कृत्यान्नंयथाशक्ति भोजयेत्सहभार्य्यया॥५॥

विद्या और सन्ध्योपासनादि कर्म में तत्पर ब्राह्मण अतिथियों के मुखाग्नि में होम करना महा विपत् से और बड़े २ पापों से बचाने वाला है। एक दिन निवास करने से ब्राह्मण अतिथि कहाता क्योंकि अनित्य-स्थिति—इन दो शब्दों से अतिथि शब्द बना है ।

यदि अतिथि रूप से क्षत्रिय पुरुष ब्राह्मण के घर आवे तो ब्राह्मण अतिथियों को भोजन कराने पश्चात् भले ही उस क्षत्रिय को भी भोजन करावे। यदि अतिथि रूप

से वैश्य तथा शूद्र ब्राह्मण के यंहां आवें तो अन्य भृत्यों को भोजन देते समय उन को भी भोजन करा देवे । तथा प्रीति के कारण आये हुए अन्य मित्रादि को यथाशक्ति सत्कार पूर्वक स्त्री के साथ में भोजन करा देवे ।

सुवासिनींकुमारीश्च रोगिणोगर्भिणीःस्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्रएवैता-न्भोजयेदविचारयन् ॥
अदत्वातुयएतेभ्यः पूर्वंभुङ्क्तेविचक्षणः ।
सभुञ्जानोनजानाति श्वगृध्रैर्जग्धमात्मनः ॥
भुक्तवत्स्वथविप्रेषु स्वेषुभृत्येषुचैवहि ।
भुञ्जीयातांततःपश्चा-दवशिष्टंतुदम्पती ॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्यांश्चदेवताः।
पूजयित्वातलःपश्चाद्-गृहस्थःशेषभुग्भवेत्॥
अघंसकेवलंभुङ्क्ते यःपचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनंह्येत-त्सतामन्नंविधीयते॥मनुः ३

इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः ॥

विवाह होकर आयी नयी पुत्रवधू, क्वारी कन्या, पथ्य खाने वाला रोगी और गर्भवती स्त्री तथा छोटे लड़के इन सब को अतिथियों से भी पहिले बिना विचारे भोजन करा देवे। इन सब देव यज्ञादि के भागों को न दे कर जो पुरुष पहिले स्वयं खा लेता है वह खाने वाला कुत्तों और गीधों से अपने भक्षण को नहीं जानता कि मुझ को कुत्ते आदि खायेंगे। यह कथन पञ्चमहायज्ञ न करने वाले के लिये निन्दार्थवाद है। अतिथि ब्राह्मणों के और अपने भृत्यों के भोजन कर लेने पर शेष बचे अन्न को स्त्री पुरुष दोनों खावें। देवता, ऋषि, मनुष्य, पितृ और गृह्य देवताओं का पूजन करके गृहस्थ पुरुष शेष का भोजन करने वाला हो। इन देवादि में ऋषियों का पूजन स्वाध्याय रूप ब्रह्मयज्ञ से होता है। वह पुरुष केवल पाप का भक्षण करता है जो अपने ही लिये पकाता है। और यज्ञों से शेष बचे का भोजन श्रेष्ठों का अन्न माना जाता है। इस लिये नित्य २ पञ्चमहायज्ञ गृहस्थ को जिस किसी प्रकार अवश्यमेव कर्त्तव्य हैं॥

इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः॥

सूचीपत्र—१ पाणिनीय अष्टाध्यायी संस्कृत भाषावृत्तिसोदाहरण २) २—ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्र १ भाग १।।) ३—ब्रा०स० मासिक पत्र २ भाग १॥) ४—गणरत्नमहोदधि (व्याकरण गणपाठ श्लोक बद्ध व्याख्या सहित) १) ६—धातुपाठ साधनसूत्रों सहित ।) ७—वार्त्तिकपाठ भाषाटीका तथा उदाहरण सहित ।) ८—दर्शपौर्णमासपद्धति भाषाटीका ॥) ९—इष्टिसंग्रह पद्धति भा० टी० ।) १०—स्मार्त कर्म पद्धति भाषाटीका ।) ११—उपनयन पद्धति भाषाटीका ।) १२—गर्भाधानादि नवसंस्कार पद्धति भाषाटीका ≡) १३—त्रिकाल सन्ध्या भाषाटीका –) १४—कालीयतर्पण भाषाटीका –) १५—शिवस्तोत्र भा०टी०)। १६—हरिस्तोत्र भा०टी०)। १७—भर्तृहरि तीनों शतक भा०टीका ॥) १८—मानवगृह्यसूत्र भा०टी० ॥) १९—आपस्तम्बगृह्यसूत्र भा० टी० ।) २०—दयानन्दतिमिर भास्कर ३) २१—सत्यार्थप्रकाश समीक्षा (स० प्र० की १५० अशुद्धि) =) २२—विधवाविवाह निराकरण द्वितीय भाग –) २३—मुक्ति प्रकाश भाषा (दयानन्दीय मुक्ति खण्डन) –) २४—दयानन्द लीला भाषा में)॥ २५—भजनबीसा १) में १००) पु०)। २६—दयानन्द हृदय १) १०० पु०)। २७—सत्योपदेश भजन १) में १०० पु०)। २८—दयानन्दमत दर्पण १) में १०० पुस्तक)। २९—दयानन्द के मूल सिद्धान्त की हानि)॥ २) में १०० पुस्तक ३०—भजनपचासा नवीन छपा मू० ≈) ३१—आर्यसमाजकाआदम ।)

पता पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा